International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 03(I), July - September, 2023, pp. 101-104

सीकर जिले कृषि उपज विपणन का प्रभाव

चोथमल कुमावत*
डॉ. तरूण कुमार यादव**

सार

किसान का उद्देश्य लाभ कमाना होता है। कृषक द्वारा उन्हीं कृषि फसलों के उत्पादन को महत्व दिया जायेगा जिसके द्वारा वह अधिक से अधिक आय प्राप्त कर सके। यदि अर्थव्यवस्था में धान व गेहूँ के दाम ऊँचे होंगे तो वह इनका उत्पादन करेगा, अन्यथा ऐसी कृषि फसलों का उत्पादन करेगा जिसके द्वारा वह अधिक लाभ प्राप्त कर सके। सरकार को घरेलू अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न फसलों के दाम बढ़ाकर रखने होंगे। अब तक सरकार की नीति निर्णय इसके विपरीत रहे हैं। घरेलू बाजार में पिछले वर्ष गेहूँ के दाम ऊँचे हो रहे थे, सरकार को इसे ऊँचे बने रहने देना था, जिससे किसान इसका उत्पादन बढ़ाते, परन्तु सरकार ने ताबड़तोड़ गेहूँ का आयात करके घरेलू दामों को बढ़ने से रोक दिया। परिणामस्वरूप गेहूँ का उत्पादन किसान द्वारा कम कर दिया गया। इसी प्रकार जब घरेलू उत्पादन बढ़ जाता है तब सरकार को निर्यात सब्सिडी देकर इसके निर्यात को बढ़ावा देना चाहिए। जैसे किसान अधिक वर्षा के समय खेत की मेड़ तोड़कर अधिक पानी निकाल देता है वैसे ही सरकार को अधिक उत्पादन को निर्यात करके निकाल देना चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था में सरकार को खाद्य सुरक्षा करनी है तो यह खाद्यान्न के ऊँचे मूल्य निर्धारित करके ही संभव है।

शब्दकोशः *खाद्य सुरक्षा, रासायनिक खाद एवं उपजाऊ मिट्टी।*

प्रस्तावना

सीकर जिले में कृषि के लिए उपयुक्त उपजाऊ मिट्टी है तथा कृषि के लिए पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध है। इस प्रकार कृषि का आधुनिकीकरण करके हम बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपुर्ति को तो बढ़ाने में कामयाब रहे है लेकिन इस बढ़ रहे उत्पादन में मुख्य भूमिका रासायनिक खादों व कीटनाशकों की रही है। जिसमें प्रति वर्ष यूरिया, नाइट्रोजन, अमोनिया, सुपर फास्फेट, पोटेशियम व अन्य रासायनिक खाद दिया जा रहा है जिससे मृदा ने एक सीमा तक तो खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाया है लेकिन अब इस सीमा के बाद खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने में असमर्थ लग रही है और यह रासायनिक खाद की मात्रा प्रति वर्ष प्रति हैक्टेयर बढ़ रही है। इस कारण भूमि की जैविक क्षमता में गिरावट आ रही है। भूमि से अधिक उत्पादन लेने की दृष्टि से मृदाओं में रहने वाले लाभदायक जीव (केचुआ अन्य सुक्ष्म जीवाणु) की संख्या में निरन्तर कमी आ रही है। इस प्रकार यही स्थिति रही तो आगे आने वाली एक शताब्दी में अधिकांश भूमि बंजर भूमि में बदल जायेगी तथा इस बढ़ती जनसंख्या के सामने खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हो जायेगी तथा भूमि की जोत का आकार छोटा हो तायेगा जिससे नवीन तकनीकी यंत्रो का उपयोग नहीं हो पायेगा।

---

* शोधार्थी, भूगोल विभाग, श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुंझुंनू, राजस्थान।
** शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुंझुंनू, राजस्थान।

इस प्रकार हम हरित क्रान्ति व अन्य क्रान्तियों के दौर से गुजरते हुए बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति में आत्मनिर्भर तो हो गये है यह सब उन्नत कृषि तकनीकी, उन्नत बीजों का प्रयोग रासायनिक खाद, कीटनाशकों व फफूंद नाशकों से ही संभव हो पाया है लेकिन इससे दुष्परिणाम तुरन्त न दिखकर दूरगामी होगें। जिस तरीके से कृषि आधुनिकीकरण हमारी महती आवश्यकता हो गई है लेकिन इससे कहीं ज्यादा आधुनिकीकरण का प्रतिकूल प्रभाव पारिस्थितिकी पर पड़ता जा रहा है। इसलिए पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम करने के लिए रासायनिक कीटनाशकों व उर्वरकों के स्थान पर प्राकृतिक, जैविक, कार्बनिक कृषि को स्थान देना चाहिए।

वर्तमान में प्रचलित कृषि रासायनिक उर्वरकों, खरपतवारनाशी व कीटनाशकों के उपयोग पर आधारित है। इनके बढ़ते उपयोग के कारण भूमि एवं वातावरण में हानिकारक तत्वों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिसके फलस्वरूप मृदा एवं मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। अतः मिट्टी व मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित, उच्च गुणवतायुक्त कृषि उत्पादन प्रापत करने क लिए कम लागत वाले उपयों को अपनाने की आवश्यकता है।

प्राकृतिक खेती का मूल मंत्र है कि बाहरी आदानों का कम से कम उपयोग तथा खेत पर उपलब्ध संसाधनों जल, जमीन, जंगल जन व जानवर का सामंजस्यपूर्व उपयोग करना है। इसके अलावा खेत की मिट्टी के साथ कम से कम छेड़छाड़, कम से कम श्रम की आवश्यकता तथा मल्चिंग, मिश्रित खेती, हरी खाद, गोबर, गोमूत्र, पानी का अति सदुपयोग करते हुए मृदा के स्वास्थ्य को बनाये रखना है। रासायनिक उर्वरक व दवाओं का उपयोग न होने से फसलों की उत्पादन लागत में कमी आती है तथा जमीन, मनुष्य व जानवरों के स्वास्थ्य को कोई खतरा भी पैदा नहीं होता है।

शुष्क कृषि पद्वति

आज शुष्क कृषि पद्वति पर्यावरण और कृषि पारिस्थितकी के लिए अति उत्तम है। इस पद्वति को किसान प्राचीन काल से ही व्यवहार में लाते आ रहे हैं। प्रारम्भ में सभी क्षेत्र कृषि के लिए अनुकूल नहीं थे। अतः कुछ क्षत्र में शुष्क कृषि पद्वति के द्वारा कृषि होती थी जैसे कि नदी बेसिन जिसमें वर्षाकाल के बाद पानी नहीं होने पर शुष्क कृषि पद्वति के आधार पर कृषि के लिए उपयोगी हो जाती थी। आज भी शेखावाटी क्षेत्र के नदियों के बेसिनों से इस प्रकार की खेती करना आम बात है। गर्मियों की सब्जियां और फल शेखावाटी की नदी–बेसिनों में अभी एक परम्परा के अनुसार होने लगी है। अतः वर्तमान संदर्भ में खाद्यान्नों की अधिक मांग वर्षा की कमी कम वर्षा के बाद अधिक क्षेत्रों का उपयोग और कृषि पारिस्थितिकी को नया मोड़ मिला है।

शुष्क कृषि पद्वति नई कृषि व्यवस्था बदलते मानव परिवेश में नवीन तकनीकी व वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए नई कृषि पद्वति कही जा सकती है। इसलिए इसके नाम के अनुरूप अनेक भूगोलवेत्ता व कृषि पण्डितों के द्वारा परिभाषित किया गया है।

कृषि में वर्षा से पूरित भूमि के सन्दर्भ में शुष्क कृषि को रोक लिया जाता है क्योंकि वर्षा पूरित भूमि ही शुष्क कृषि के रूप में उपलब्ध होती है। ऐसी भूमि जिस पर वर्षा के आधार पर फसलें बोई जाती है। लेकिन शीतकाल (रबी) में पानी के अभाव में भूमि बेकार पड़ी रहती है। इस प्रकार इस बेकार पड़ी भूमि का उपयोग ही शुष्क कृषि की विचारधारा है इसलिए ऐसी भूमि में खेती करना शुष्क कृषि कहलाती है। वर्षा के अभाव में कोई सिंचाई के साधन उपलब्ध न होने पर खेती करना शुष्क कृषि कहलाती है। अतः स्पष्ट है कि फसलें मिट्टी में व्याप्त नमी पर निर्भर रहती है।

वर्षा की कमी में की जाने वाली फसलों को प्राकृतिक तौर पर नमी प्राप्त होती है और उसी के आधार पर फसलें पानी की आवश्यकता को पूर्ण कर लेती है। शुष्क कृषि में वेही फसलें पनप पाती है जिनको पानी की आंशिक आवश्यकता होती है इसलिए कृषक अनेक तरीकों से मिट्टी में नमी बनाये रखता है विशेषकर खेत में बार–बार हल चलाकर शेखावाटी में फैरी व पड़त विधि द्वारा खेतों में नमी बनाई रखी जाती है। शेखावाटी क्षेत्र में शुष्क कृषि सरसोंए चनाए जौ फसल के लिए अधिक होती है।

सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर प्रभाव

कृषि आधुनिकीकरण एवं विकास के साथ–साथ अध्ययन क्षेत्र के लोगों के सामाजिक स्तर में परिवर्तन हुआ है। अतः यहां के लोगों के रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा में परिवर्तन आया है। इसके अलावा यहां साक्षरता की दर में भी वृद्धि हुई है, आर्थिक स्थिति सुधरने से ही यहां के लोगों में शिक्षा का स्तर बढ़ा है, अतः यहां के लोग उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर होने लगे हैं, लगभग प्रत्येक गांव में चार–पांच व्यक्ति तकनीकी शिक्षा से जुड़े जुए मिल जायेंगे। आधुनिकीकरण एवं विकास के कारण ही यहां की जनसंख्या की सोच में परिवर्तन ला दिया है, अतः यहां पूर्व में विवाह की उम्र लगभग 12 से 16 वर्ष की होती थी, लेकिन अब जागरूकता के कारण विवाह 21 से 25 वर्ष की आयु से अधिक होने पर हो रहे हैं। यह परिवर्तन अध्ययन क्षेत्र में हीं नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश में भै दिखाई दे रहा है। अतः वर्तमान में देश का युवावर्ग ऊंचाईयों को छू रहा है। अध्यन क्षेत्र के साामकि स्तर में परिवर्तन का ही परिणाम है कि अब यहां के प्रत्येक गांव में परिवहन के साधनों की संख्या में वृद्धि हो गई है। कृषि आधुनिकीकरण के कारण फसल उत्पादन में वृद्धि हुई है जिससे किसानों की प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है। कृषि आधुनिकीकरण के कारण ही अध्ययन क्षेत्र में कृषि के प्रयुक्त आधुनिक साधनों में काफी परिवर्तन हुआ है। इतना ही नहीं इन साधनों की गुणवत्ता में भी काफी परिवर्तन आया है, जिससे समय, श्रम एवं धन की बचत होती है।

सरकारी प्रयास

कृषि विपणन में सुधार की दृष्टि से सरकार द्वारा जो भी उपाय किए गए हैं, उन उपायों के द्वारा कृषि क्षेत्र में विस्तार तथा कृषि मूल्यों में स्थिरता प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार करने हेतु सरकार द्वारा निम्नलिखित प्रयास किए गये हैं–

- विनियमित बाजारों की स्थापना मण्डियों में दलालों तथा आढ़तियों के कपटपूर्ण व्यवहार से किसानों को बचाने के उद्देश्य से नियंत्रित मण्डियों की स्थापना की गयी है। नियंत्रित मण्डी का संगठन सम्बन्धित विधान के अनुसार होता है। इस प्रकार मण्डियों में व्यवस्था के लिए एक समिति का गठन होता है जिसके सदस्यों में राज्य सरकार के प्रतिनिधि, स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधि, आढ़तिए, दलाल और किसान होते हैं। इस प्रकार समिति में सभी हितों का प्रतिनिधित्व होता है। ये समितियां विपणन व्यवस्था को सुधारने की दृष्टि से श्रेणी विभाजन को प्रोत्साहन देती है, खुली नीलामी पद्धति को लागू करती है, कपड़े के नीचे गुप्त भाव निर्धारण पर रोक लगाती है, अनुचित कटौतियों पर प्रतिबन्ध लगाती है। प्रामाणिक बांटो के प्रयोग को अनिवार्य करती है, किसानों और व्यापारियों के बीच मतभेदों को दूर करने में मध्यस्थता करती है, इत्यादि। इस प्रकार नियंत्रित मण्डियों में अनियंत्रित मण्डियों के अनेक दोष दूर हो जाते हैं। नियंत्रित मण्डियों में दलालों और तौलने वालों को लाइसेन्स लेना होता है। इनके द्वारा कपट करने पर इनका लाइसेन्स रद्द किया जा सकता है। आढ़तियों के लिए नापतौल की गड़बड़ी करना और अनुचित कटौतियां काटना संभव नहीं रहता।

नियंत्रित मण्डियों की स्थापना की दिशा में सर्वप्रथम प्रयास 1897 में बरार में किया गया था। इस प्रयोग की सफलता के बावजूद भी नियंत्रित में सरकार ने विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई। इसलिए देश में नियंत्रित मण्डियों की स्थापना की गति धीमी रही। 1950–51 में नियंत्रित मण्डियों की संख्या 265 थी जो बढ़ते–बढ़ते अब 7062 तक पहुंच गयी है। केरल, मिजोरम, सिक्किम, अण्डमान व निकोबार द्वीप, दादरा व नगर हवेली तथा लक्षद्वीप ने मण्डियों के नियंत्रण के लिए आवश्यक अधिनियम अभी तक नहीं बनाये गये हैं। सर्वप्रथम सन् 1917 में कपास एवं अन्न बाजार अधिनियम के अनुसार भारत में विनियमित बाजारों की स्थापना प्रारम्भ हुई। राजकीय कृषि आयोग की सिफारिशों के अनुसार देश में अन्य वस्तुओं के लिए भी विनियमित बाजारों की स्थापना की जाने लगी। इस सम्बन्ध में तमिलनाडु, महाराष्ट्र, आन्ध प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब आदि में बाजार अधिनियम बनाये गये हैं। 1986 तक विनियमित बाजारों की संख्या बढ़कर 4450 हो गयी थी। आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में विनियमित मण्डियों की स्थापना में प्रगति अच्छी है।

सरकार द्वारा देश भर में माप और तौल के बट्टों का मानकीकरण विशेषकर उल्लेखनीय है। सरकार ने देश में प्रचलित विभिन्न प्रकार के माप और तौल के बट्टों को समाप्त कर इनके स्थान पर मीट्रिक प्रणाली अपनायी है। इस प्रकार किसानों के साथ बट्टों के आधार पर होने वाला छल कपट समाप्त हो गया है।

निष्कर्ष

बाजार में खाद्यान्न फसलों का मूल्य किसानों को दिये जाने वाले ऋणों पर की गयी राहत से निर्धारित नहीं होता बल्कि यह खाद्यान्न फसलों की मण्डी में की गयी पूर्ति तथा मांग के अनुसार निर्धारित होता है। अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु की ही भांति कृषि वस्तुओं की कीमत का निर्धारण भी मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के संतुलन बिन्दु पर होता है। अर्थात् जहाँ वस्तु की मांग मात्रा, वस्तु की पूर्ति मात्रा के बराबर होती है वहीं कीमत निर्धारित होती है। वस्तुओं की मांग के आधार पर वस्तुओं की अधिकतम कीमत निर्धारित होती है और क्रेता (उपभोक्ता) इस अधिकतम निर्धारित कीमत से कम कीमत पर वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जबकि विक्रेता (कृषक) वस्तुओं की उत्पादन लागत के आधार पर वस्तुओं के विक्रय की न्यूनतम कीमत प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। वस्तुओं की मांग एवं पूर्ति के संतुलन स्तर पर निर्धारित होने वाली कीमत ही संतुलित कीमत कहलाती है जिस पर क्रय तथा विक्रय की गयी वस्तु की मात्रा को ही संतुलित मात्रा कहते हैं। संतुलित कीमत क्रेता तथा विक्रेता दोनों को ही संतुष्ट करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. काशीनाथ सिंह, डॉ. जगदीश सिंह – आर्थिक भूगोल के मूल तत्व
2. डॉ. रामकुमार गुर्जर, डॉ. बी. सी. जाट – पर्यावरण अध्यय
3. डॉ. पी. एस. नेगी – पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल
4. डॉ. लतिका झा, डॉ. धीरेन्द्र देवर्षि – पर्यावरण अध्ययन
5. प्रोफेसर एच. एस. शर्मा, डॉ. एम. एल. शर्मा – राजस्थान का भूगोल की विशेष विवेचना।
6. डी. डब्ल्यू. पीपेर, यूनिवर्सिटी ऑव नेवादा – लास वेगास, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सी. ए. ब्रेबिया – वेसेक्स इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलोजी, ब्रिटेन।
7. शहरी जल – एस. मैम्ब्रत्ती पोलीटेक्नीको – डी – मिलानों, इटली एवं सी. ए. ब्रेबिया – वेसेक्स इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलोजी, ब्रिटेन।

❖◆❖